बहिर्मुखी–अन्तर्मुखी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

बहिर्मुखी का अर्थ है– जीव का बाह्य संसार से सम्बन्ध स्थापित करना। अन्तर्मुखी का अर्थ है आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करना। मानव संसार में बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दोनों भावों को रखता है। बर्हिर्मुखी की अपेक्षा अन्तर्मुखी जीव आत्मा का अनुभव करता है। बहिर्मुखी धन और दौलत को अधिक महत्व देता है। वह जड़ वस्तु से प्रेम करता हैं। अन्तर्मुखी आत्मा में रमण करता है। सांसारिक व्यक्ति बहिर्मुखी होता है। साधु–सन्त, ऋषि–मुनि अन्तर्मुखी होते हैं। वे संसार को त्यागकर आत्मा में रमण करने का प्रयास करते हैं। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य निवृत्तिभाव है। पद और प्रतिष्ठा उनके लिए महत्व नहीं रखती।

बहिर्मुखी व्यक्ति जगत को ही सब कुछ मानता है। वह साधन को ही साध्य मान लेता है। जड़ में सुख नहीं है। जड़ का सुख केवल सुख प्रतीत होता है। सुख आत्मा में है। भीतरी जगत में सुख का खजाना है। जिसने आत्मा के सुख को प्राप्त कर लिया उसको यह संसार निस्सार प्रतीत होता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति जल में कमल की भांति जीवन व्यतीत करता है। जीवन में जड़ और चेतन दो का ही संयोग है। जड़ का खाता संसार का खाता है और आत्मा का खाता चेतन का खाता है।

किसी भी वस्तु का अपने मूल स्वरूप में रहना स्वभाव है। विभाव इसका ठीक विपरीत है। पानी का स्वभाव है शीतलता। यदि पानी को गर्म कर दिया जाये तो पानी के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। इसी तरह आत्मा का ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में परिणत होना उसका स्वभाव है। काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि कषाय विभाव हैं। आत्म शुद्धि साधनं धर्म इस परिभाषा के अनुसार धर्म वह तत्व है, जिससे आत्मा शुद्ध होती है। आत्मा मूल रूप से ज्ञानस्वरूप है। वस्तु का स्वभाव ही धर्म कहलाता है। जो इतर चीजें होती है वह विभाव हैं। जैसे पानी का गुण है शीतलता, अग्नि का स्वभाव है उष्णता। जब उनके गुण को विकृत किया

जाता है तो उनका स्वरूप बदल जाता है। जब वह अपने स्वरूप में रहता है तो वह तत्व स्वभाव कहलाता है।

आत्मा स्वभाव से एकरूप, एकरस है। स्वभाव व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है क्योंकि सभी मानव एक समान हैं। जब धर्म, जाति और वर्ग के अनुसार उनका वर्गीकरण कर दिया जाता है, तब धर्म और सम्प्रदाय का ठप्पा उन पर लग जाता है। यही विभाव है। एक उदाहरण के द्वारा इसको समझा जा सकता है। धर्म को सम्प्रदाय की जंजीर से बांध दिया जाता है तो धर्म विकृत हो जाता है। भारत में अनेक धर्म हैं– जैन, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम, पारसी और हिन्दू धर्म। ये सब सम्प्रदाय हैं। सबकी अपनी–अपनी पूजा पद्धति और उपासना पद्धति है और उस पूजा पद्धति के अनुसार धर्म को संकीर्ण कर दिया जाता है, स्वभाव को विभाव में बदल दिया जाता है। धर्म मानव को मानव से जोड़ता है। धार्मिक क्रियाकलाप के आधार पर मानव अपने आस्था को प्रकट करता है। सुख–दुःख, मोक्ष इत्यादि तत्वों को प्राप्त करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता जो कि हिन्दू धर्म का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, इसमें आत्मा की अजरता अमरता का बड़ा दार्शनिक विवेचन किया गया है। इसमें बताया गया है कि शरीर नश्वर है और आत्मा अजर–अमर। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करता है। शरीर पंचभूतात्मक है। आत्मा इससे परे है। शुद्ध आत्मा ज्ञान दर्शन और चारित्र से युक्त है। आत्मा अरूपी है किन्तु जब यह शरीर को धारण करती है तो यह रूपी कहलाने लगती है। सच्चिदानन्द आत्मा का स्वभाव है और शरीर में आने के पश्चात् आत्मा की विभाव परिणति हो जाती है। आत्मा और शरीर दोनों भिन्न–भिन्न हैं। आत्मा चेतनायुक्त हैं और शरीर पंचभूतात्मक है। पंचभूतों में समय–समय पर परिणति होती रहती है। स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता, किन्तु विभाव बदलते रहते हैं।

जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव

है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभाव है।

शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्‌गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी भावों का मार्ग अलग–अलग है। एक बाहरी मार्ग है और दूसरा आन्तरिक मार्ग है।